श्रीमतेरामानन्दाय नमः

# प्रेममयी मुद्रिका

16081

लेखक
मानस तत्वान्वेषी
पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज
संस्थापक श्री रामग्रंथागार
मणि पर्वत, श्री अयोध्याजी

प्रकाशक
पं० श्री गणेशात्रेय
आत्रेय वैदिक शोध संस्थानम्
आत्रेयनगर ( माधवपुर )
पो० केवस, जिला समस्तीपुर ( बिहार )

द्वितीय संस्करण २०३७ ] [ सेवा पुनर्मुद्रणार्थं ४ रुपया

श्रीमतेरामानन्दाय नमः

# प्रेममयी मुद्रिका

16081

लेखक

मानस तत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराज

(संस्थापक–श्रीरामग्रंथागार)

मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी

प्रकाशक

पं० श्री गणेशात्रेय

## आत्रेय वैदिक शोध संस्थानम्

आत्रेयनगर ( माधवपुर )

पो० केवस, जिला समस्तीपुर ( विहार )

प्रकाशक
पं० श्रीगणेशात्रेय
आत्रेय वैदिक शोध संस्थानम्
आत्रेयनगर (माधवपुर)
पो० केवस, जिला समस्तीपुर (विहार)

द्वितीय संस्करण २०३७

सेवा पुनर्मुद्रणार्थ चार रुपया

मुद्रक
माधो प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद—३

# प्रथम संस्करण की भूमिका

## श्रीकृष्ण-साहित्यिक-अनुसन्धान-मन्दिर

पटना—६

संचालक—

जगन्नाथ राय शर्मा
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
पटना विश्वविद्यालय

तिथि
३-९-६१

रामचरितमानस एवं तुलसी के अन्यान्य ग्रन्थों के परम मर्मज्ञ पूज्यवर पण्डित श्री रामकुमारदास जी न केवल हिन्दी, किन्तु संस्कृत के भी असाधारण पण्डित है। आपमें पाण्डित्य एवं प्रतिभा का अलौकिक मणिकाञ्चन संयोग है। अगाधपाण्डित्य प्रतिभा के साथ-साथ आपमें सहृदयता भी पूर्ण मात्रा में विराजमान है। इस बात का समुज्ज्वल दृष्टान्त है आपका यह 'प्रेममयी मुद्रिका' शीर्षक निबन्ध। महात्मा एवं भक्त तो आप हैं ही साहित्यिक कला में भी आप पूर्णतः निष्णात है। इसीलिये, आपकी लेखनी ने सहृदय भक्तों एवं साहित्यकों के लिये इस निबन्ध में प्रेम-पीयूष की प्रचुर वर्षा की है। निबन्ध का उत्तरांश पूर्वांश से पृथक् है, यद्यपि वह सर्वथा असम्बद्ध नहीं है। उसमें अनेक प्रमाणों के आधार पर तपस्वी वेष में भी राम के पास अंगूठी का होना और उसका सीता जी के पास अभिज्ञान रूप में भेजा जाना सिद्ध किया गया है। लेख माधुर्य, सौंदर्य, प्रमाणों एवं तर्कों से ओत-प्रोत है। आशा है, मानस-प्रेमियों के लिये यह आनन्दप्रद एवं मनोरञ्जक होगा।

**ह० जगन्नाथराय शर्मा**

*श्रीमतेरामानन्दाय नमः*

## प्रथम संस्करण में

# लेखक की ओर से !

साकेत वासी श्रद्धेय महान्त श्री देवदास जी 'देव' डाकोर की शंका के समाधान के साथ यह निबन्ध मानसमणि पत्र में प्रकाशित हुआ था। श्री 'देव' जी ने कई बार आग्रह किया कि इसे कुछ और पल्लवित कीजिये। उसी प्रेमाग्रह के कारण निबंध एवं समाधान दोनों अंश ही पल्लवित होकर 'अवध संदेश' के चार अङ्कों में प्रकाशित हुआ। अनेक प्रेमियों ने इसे पुस्तिका रूप देने का आग्रह किया जिससे यह मुद्रिका अब पुस्तिका रूप में प्रकाशित हो रही है। बिहार के अँग्रेजी शिक्षितों में प्रो० श्री जगन्नाथ राय शर्मा "श्री तुलसी साहित्य, के सर्वश्रेष्ठ विद्वान माने जाते हैं। आपने श्री तुलसी साहित्य पर भी कई बड़ी-बड़ी एवं उपादेय पुस्तकें लिखी हैं। आपने भूमिका लिखकर इस मुद्रिका में नग जड़ दिया है। "अल्पारम्भ क्षेमकरः' न्यायानुसार श्री तुलसी साहित्य प्रचारक समिति शृङ्गबेरपुर की पहली भेंट मुद्रिका के रूप में ही मानस प्रेमियों को अर्पित की जाती है।

● ● ●

*श्रीमतेरामानन्दाय नमः*

# प्रेममयी मुद्रिका

जासु बाहुबल गरवित रामसहित परिवार ।
निशि दिन मम रक्षा करत सोई पवन कुमार ॥

श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरकान्तां;
कान्तां प्रभूतप्रणतार्तिहरां मनोज्ञाम् ।
राजेश्वरीं ववुधबृन्दगणाभिवन्द्यां,
नित्यं नतोऽम्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम् ॥

जो त्रयलौकन मौलिकिरीट जड़े जनु नीलमणी शुचि सोहैं ।
श्रीमिथिलेश ललीमुखपंकज के प्रिय भौं रसारस मोंहैं ॥
दैत्यबधू-दृग-खंजन-अंजन धोवन को कटु धूमवनो हैं ।
सो रघुवंश 'कुमार' धनुधर मो हियमो हियमोहि रहो है ॥

जिस समय रावण की अशोकवाटिकारूपी कारागार में अवरुद्धा महारानी श्रीजानकी जी को अशोक से अग्नि मांगने पर भगवान् श्रीरामजी की दिव्य मुद्रिका प्राप्त हुई । उस समय श्रीजी सहसा तो उसे पहचान ही नहीं सकीं, अङ्गार समझा और पहचानने पर भी पहले तो आप ही आप मुद्रिका को अभिलक्षित करके कहने लगीं किः—

या शैशवावधिमनोरमरामचन्द्र—
हस्तांगुलिप्रणयिनी सुभगा सुवृत्ता ।

अन्येव सा जनकराज सुता कथंनु,
लंकामुपागतवती मणिमुद्रिकेयम् ॥
(प्रसन्नराघवनाटकम् ६।८)

बालकाल सौं संग रही, मानहु• दूसरी सीय।
पिय तजि आई लंक;किमि, री•मुंदरी कमनीय ॥
'राघव' की प्यारी परम मणि मुंदरिकिहि तौर।
हरि आई या लंक में जनकसुता सी और ॥

जो शैशव एवं बाल काल से लेकर कुमार पौगण्ड किशोर युवा, बालक्रीड़ा, विद्याध्ययन, विवाह बनवास आदि सब काल में प्रियतम श्रीरामभद्रजू की मनोरम हस्तांगुलि में इस तरह सुभगा एवं सुबृत्ताप्रणयिनी की तरह लगी रहती थी मानो दूसरी जनक-नंदिनी ही हों। वही यह मणिमुद्रिका यहां लंका में वहां से कैसे चली आई ? कुछ समाधान न होने पर अब सुस्पष्ट रूप से मुद्रिका को ही संबोधित करके पूँछने लगीं कि—

मुद्रे ! ते कुशलं प्रिये ! जनकजे ! क्षेमं च रामस्य मे,
सत्यं मां स्मरति ? प्रविह्वलमनाः किं भाषते प्रोषितम्।
क्वासौ मद्विरहात् कथं च नयतीत्युक्त्वा मुहूर्त्तानिमान्,
शुष्यत्यालपति ह्यसावभिमृश्यत्यामुह्यति ध्यायति ॥६१॥
मुद्रे ! ब्रूहि सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादा स्वयं ?
सन्ति स्वामिनि ! मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया।
मां वै व्याहर मैथिलेन्द्रतनये ! नामान्तरेणाधुना···॥६२॥
(महा नाटक ५,६१,६२)

प्रीतम की प्यारी मुद्रिके बताउ छेमनिज
जनक दुलारी ! छेम मेरो रघुराई को।

कबौं मोंहि सुमिरत प्रीतम बताउ सखि !
ब्याकुल रहत नाथ भाषैं निज भाई को ॥
कहां यहि काल मम बिरह बिहाल नाथ
बीतत दिवस निशि किमि रघुराई को,
ध्यावति बिमोहति सुखात गात धरैं धीर
सीय जू 'कुमार' लखि मुद्रिका महाई को ॥

मुद्रे ! जहान्मामिह कस्य हेतोत्वामप्यसौ लक्ष्मणपूर्वजन्मा
निशाचरागारनिवासभालोल्लेखोऽथवा तत्करयोग एवं ॥

(किशोरकाव्यराम)

री मुंदरी किमिपिय तजे, मोंहि तोंहि जहँ खललोग।
लंक बास लिपि कर्म-कै, फल प्रभु-कर संयोग ॥

(भारतीय कुलवधू होने से काम चलने योग अवसर पर पति का नाम स्पष्ट न लेकर संकेत से 'लक्ष्मण पूर्वजन्मा' कहकर पूँछा) हे मुद्रिके ! लक्ष्मण कुमार के जेठे भाई ने मुझको और तुमको क्यों त्याग दिया ? और त्यागा भी तो कहां कि इस राक्षसपुरी लंका में हरे ! हरे !! क्या निशाचरों के कारागार में निवास करने के लिये मेरे और तुम्हारे ललाट में व्रह्मा की लिखी हुई कर्मलिपि ही है अथवा उनके श्रीरामजी के हस्त ग्रहण का प्रभाव ही ऐसा है कि हमारी और तुम्हारी तरह जिसको ही वे अपने हस्त में ग्रहण करलें उसे निशाचर कारागार में जाकर कड़ा यंत्रणा सहन करनी ही पड़े ? यदि ऐसा हो तो उनके कर ग्रहण से भगवान् सबको बचावें, नहीं तो हमारी तरह दूसरों का जीवन भी दुःखमय हो जाये···। संभवतः आगे कुछ और भी प्रेमोपालम्भनात्माक कटुउद्गार श्री जी के श्रीमुख से निकलते कि इतने में मुद्रिका बोलने लगी, अर्थात् मुद्रिका में से स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ने लगी कि :—

सीते ! न त्यक्ता रघुपुङ्गवेण न भाललेखोऽपि निवासमत्र ।
प्रिया-वियोगे स कृशत्वमाप्तः हस्तादहं सुस्खलिता भवामि ।। (लेखकस्य)

न मम कर्मलिपि पोच, भामिनि तजेउ न मोंहि प्रभु ।
पिय दुर्बल तुव सोच, वनि कंकन महि खसि परिउँ ।।

हे सीते ! आपकी हालत तो मुझे ज्ञात नहीं परन्तु मेरे विषय में जैसी आपकी धारणा हो रही है वह धारणा मुझे एवं प्रेम मूर्ति प्रेमास्पद श्री राघवेन्द्र जी के साथ घोर अन्याय करने वाली है । क्योंकि मेरे भालपट्ट पर निशाचरगार में निवास करना लिखा होता तो मैं पहुँचाई जाती निशाचरगार में न कि परमपवित्र परमसुखद एवं महामंगलमय आपकी गोद में । अतः आप निश्चय समझ रखिये कि मेरे भाल की लिपि सर्वथा भिन्न है—

परमानन्दं पदमसुखदं, पवित्रं परमं तथा ।
महामङ्गलमयं सीते ! भालोल्ले खलिपिर्मम ।। (लेखकस्य)
परम पवित्र समोद, मंगलमय मम भाललिपि ।
मोंहि भेजेउ तव गोद, ताते राज 'कुमार' प्रभु ।।

और भला रघुपुङ्गव श्रीरामभद्र जू मुझे क्योंकर त्याग सकते हैं वे तो मुझे प्राण के समान रखते थे, क्योंकि मेरे बक्ष-स्थल पर जो उनके साथ ही आपकी प्रेम मूर्ति अंकित है । वैसे तो वे अपने शिशुपन ही से मुझे मान देते आए हैं पर जब से मेरे हृदय पटल पर उन्होंने आपकी इस प्रेम एवं सौन्दर्यमयी दिव्य प्रतिमा की स्थापना करवा दी है तव से तो अपने प्राणों से भी बढ़कर मेरा आदर करने लगे थे, परन्तु क्या कहा जाय :—

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा ।

आपके ही कारण मेरा इतना आदर बढ़ गया था कि अन्य आभूषण मुझसे ईर्ष्या करते थे । यहां तक की उदासी-वेष में बन आते समय भी उन्होंने मुझे अपने कर कमल से अलग नहीं किया । और कहाँ तक कहा जाय उस

दिन उस मंगलरूप दण्डकारण्य की पुनीत पर्णशाला से आपका वियोग होने पर भी जबकि वे :—

दूरिहि जाइ छनैछन लौटि, कुटी कर द्वार पिछारि निहारैं।
गद्‌गद् कण्ठ हृदैअति ब्याकुल, दौरिगिरैं तनु नाहि सँभारैं ।।
कंजमुखी अति मुग्ध प्रिये ! सिय विम्बफलाधर बानि उचारैं।
ध्यावैं हिये सिय कोमल आनन राज 'कुमार' दृगों जल ढारैं ।।

दूरंगच्छन्पुनरपि कुटिं पृष्ठतश्चाग्रतश्च,
शीघ्रे शीघ्रे स्खलितिहृदयः षश्यंति संविचिन्त्य।
सीते ! मुग्धे विकचवदने पक्वबिम्बाधरोष्ठे,
स्मारं स्मारं मदन कलितं तन्मुखं रोदतीह ।।

(महानाटक)

ऐसी दशा में भी अपने भरसक मुझे अपने से अलग नहीं होने देते थे जब कि—

कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा

की दशा हो जाती थी परन्तु मेरे प्रेमदेव मेरे राघवेन्द्र प्रभु आप के वियोग में इस तरह सूख गये हैं कि मैं उनको कनगुरिया (कनिष्ठिका) अंगुली से क्रमशः अनामिका मध्यमा होते हुए अंगुष्ठ में पहुँच गई, परन्तु जब अंगूठे में भी ढीली होकर गिर पड़ने लगी तव प्रियतम ने मुझे कंकण की तरह कलाई में पहिन लिया—

रामस्त्वद्विरहेण कंकणतां यस्यै चिरं दत्तवान्।

(हनुमन्नाम ६।१ महानाटक ५।६२)

कनगुरिया के मुँदरी करकै कंकन होइ। बरबै रामायण।

तुम पूँछति कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहं राम ॥ (रामचन्द्रिका)

तनक आप अपनी उस दशा का स्मरण तो कीजिये जब कि श्रीराघवेन्द्र सरकार ने स्वयं अकेले ही बनगमन के लिये प्रस्तुत होकर आपको श्रीअवध के राजमहल में रहने के लिये कहा था तब

यास्यामीत्युक्ते हृदयपतिना पंचषा शंखभूषा।
स्वैरं स्वैरं झटिति गलिता पाणि पंकेरुहाग्रात् ॥

और जब आपकी यह दशा देखकर प्राणधन प्रभु ने कहा कि अच्छा—

परिहरि सोच चलहु बन साथा।

तुम साथ चलो, तुम्हें छोड़कर अकेले न जाऊँगा। तब इतना सुनते ही प्रसन्नता से आपकी जो दशा हो गई थी

नो यास्यामीत्यनुवददिमां वाचमाकर्णयन्त्याः,
शेषा भूषा अयि चटचटेत्येव भङ्गं समीयुः ॥
(किशोर काव्य रामायण)

जाऊं जबै बन बोले हृदै धन सूखिगे गात सशोक प्रिया को।
कंकन चूरि परीं खसि भूमि लखाइ दियो सब दाह जियाको ॥
देखि कह्यो अवधेश 'कुमार' न जाहुँ अकेल तजो जु भियाको।
यों सुनि सानंद फूलत अंग, बचीं चुरियाँ चटकीं जु सियाको ॥

और तब भला श्रीरामभद्र जू का तो कहना ही क्या है।

देवि आपको स्मरण है कि एक बार श्रीअवध के कनक भवन में आप दर्पण में अपना श्रीमुख देख रही थीं जिसे देखकर प्रियतम ने अद्भुत है अद्भुत है कहकर—

रविमण्डल में शशिमण्डल है शशिमण्डल में बही धार त्रिवेनी

इस पंक्ति की बारबार आवृत्ति करने लगे और तब आपने दर्पण देखना बन्द करके प्रियतम की ओर मुग्ध भाव से देखने लगीं मानों उस पंक्ति का भावार्थ स्पष्ट जानना चाहती हों, प्रियतम के कराम्बुज में होने से उस मसृण कोमल कर के साथ मैं भी आपके स्कंध देश पर पहुँच गई तो प्रियतम के मुखमण्डल में आपके श्रीमुख का प्रतिबिम्ब देखकर मैंने ही उस पंक्ति को एक समस्या मानकर पूरा करके इस तरह सुनाया:—

पिय आननमें सिय आनन राजत आन नहीं उपमातिहि देनी।
केशन मांग विराजत बन्दन बन्दन पै शुचि मोतिन श्रेनी ॥
'रामकुमार' लखैं मन मोहित मोहित यों उपमा हिय लेनी।
रबि मण्डल में शशि मण्डल है शशि मण्डल में बही धार त्रिवेनी ॥

इस पूर्ति को सुनकर प्रियतम के कर कमल सहित मुझे (मुद्रिका) को आप बारबार चूमने लगीं थी और प्रियतम प्रभु ने मेरा कितना मान बढ़ाया वह तो आपको ज्ञात ही है आपके साथ तो यदाकदा ही इस पंक्ति को गुनगुना दिया करते थे पर आपके अपहृत हो जाने पर तो दिन मे न जाने कितनी बार इस अन्तिम पंक्ति की आवृत्ति किया करते हैं। और कहां तक और क्या-क्या कहूँ ? अभी उस दिन आपके बिना सूनी कुटिया देखकर प्रियतम को कहते सुना था कि:—

वितर वितर वाचं कुत्र-सीते गता त्वं,
परिहर परिहासं सर्बथा दुस्सहं मे।
त्वमसि खलु तनूजा हन्त सर्वसहायाः,
सुतविरहविमुक्तप्राणराजात्मजोऽहम् ॥
(महानाटक)

हे महिनन्दिनि सीय गई कित वेगि सुशीतल वानि सुनावो।
और नहीं सहि जात वियोग बिथा, परिहास कथाहिं दुरावो ॥

सर्वंसहामहिकीतनुजा तुम ताहि ते चित्त कठोर बनावों ।
पुत्र-वियोग-तजे-तनु भूष 'कुमार' हौं तासु प्रिये समुझावो ॥
मायामृग हनि बन्धु सह, प्रविशे प्रर्ण कुटीर ।
शून्य 'कुमार' त्रिकोण, लखि चौथ न लखे अधीर ॥

जब मैं प्रियतम की तर्जनी में थी एक पूर्णिमा को रात को उसी तर्जनी को चन्द्रमा की ओर निर्देशित करके लक्ष्मण कुमार से वार्तालाप करने लगे कि:—

कौन लसै नभ में वह बन्धु ! न चीन्हत राघव यो शशितो है ।
मों कह तौ रवि भासत तात प्रभोऽसित अंक तहां किमि सोहै ॥
अङ्क नहीं दुख दाग परो उर जो कुलतीय निसाचर जोंहै ।
कैरव क्यों विकस्यो सुकुमार ! 'कुमार' ! हमैं लखि मार हँसो है ॥

कभी-कभी लक्ष्मण कुमार से पूंछते हैं कि:—

को तुम तात ? न चीन्हत नाथ सदा तुव दास लखौ लखनै ही ।
क्यों मोहि नाथ कहौ हम कौन ? प्रभो ! रघुराज दयालु सनेही ॥
हौं रघुराज 'कुमार' अहौं तब क्यों बन घूमत साधु बनेही ॥
श्रीमिथिलेशलली पथ खोजत, हासिय ! यों कहि मूर्छित नेही ॥

आपके वियोग में राजकुमार प्रभु सदैव सामने ही देखते चलते हैं लज्जा के कारण न तो नीचे धरती की ओर देखते हैं और न ऊपर सूर्य की ओर ही। कभी-कभी लज्जा का कारण कह उठते हैं कि—

आजु लगे यहि भानु सुबंशहिं मोंसम नहिं कुपूत भयो ।
जाकर नारि कहूँ निसिचारि हरी जिहि ते कुलदाग भयो ॥
सासु सदा धरती धिरकारहिं सूर्य लखैं विकराल भयो ।
ता हित रामकुमार विलोचन संमुख उर्ध्व न निम्न भयो ॥

एक बार अर्धं रात्रि के समय जब चन्द्रमा सोलहो कला से विकसायमान होकर अपनी सहस्र शीतकिरणों से पीयूष बृष्टि कर रहा था प्रियतम जू

मुक्ताकाश के नीचे लेटे थे, और श्रीलक्ष्मण कुमार पगचम्पी कर रहे थे, सहसा प्राणनाथ चिल्ला पड़े कि:—

प्रिया हरण कर नाहिं दुख, नहिं मोहिं दुख सियदूरि।
सोच एक मम कर अबै, धनु 'कुमार' शर पूरि॥

फिर कहने लगे कि:—

घोर तपै रवि बन्धु चलौ भगि, पेड़ तले परि छांह सुलीजै।
रातिहिं सूर्य कहां रघुनाथ, सुचन्द्र प्रकाशहि घाम गनीजै॥
क्यों तुम तात गिनौ यहि कौ शशि अंक कुरंग 'कुमार' भनीजै।
हा मृगनैनि सुचन्द्रमुखी सिय, तों विनु क्यों तनु प्राण रहीजै॥

कभी बन में आपका अन्वेषण करते-करते प्रियतम प्रभु आरण्यकीय पशुपक्षी बृक्षलता फल पुष्पादिकों से कहने लगते कि:—

हे खग हे मधुकर श्रेणी। तुम देखी सीता मृग नैनी।
कोकिल कीर कपोत शचान जु, शारिक हारिल हंस! बतावो।
बायस मोर महोख परावत, सारस खंजन नेकु लखावो॥
तीतर-गीध रथांग 'कुमार' पपीह प्रिया-कित थाह लगावो।
बाज-लवा रुरुआ कुररी, चटका चट चाहि सिया सुधि लावो॥
चमरी तुव चौंर समान प्रिया-धरिबेनी छिपी कहँ नेकु सुनौ रे।
मृग भामिनि मो मृगनैनी कहां गजराज कितै गजगौनी गुनौरे॥
मृगराज-प्रिया कटि खीनी कहां शश अश्व क्रमेलक खड्गिगुनौरे
अति व्याकुल ढूँढ़त रामकुमार जू, हाय प्रियाकित शीश धुनौरे
कदली कचनार कदम्ब पलाश सुचन्दन चीड़ अशोक रसाला।
खिरनी सुरपादप पीपर औबट श्रीफल दाख बदाम विशाला॥
धवसेमर नीम सनी सिरसा सलई पकड़ी जमुनी फलमाला।

अवलोके कहूँ अवधेश 'कुमार' प्रिया प्रिय नेबु प्रियंगु तमाला ॥
बेला चमेली निवारी जुही तुम चम्पा लखा कहूँ चम्पकबरनी।
माधवि मालति मौलसिरी मुचुकुन्द गुलाब लखी ममघरनी ॥
केतकि कुन्दक नैर जपा-मुनि पुष्प खड़े परके हित धरनीं।
कोऊ लखावै प्रिया मम जो अवधेश कुमार रहैं सुरिनी ॥

हां तो मुझे कलाई में पहनने पर भी वे जब इतनी कृशता को प्राप्त हो गये कि मैं उनके हाथ से सुस्खलित हो जाया करती रहूँ (गिर जाया करती हूँ) तब यह देख मुझे डर लगने लगा कि कभी ऐसा न हो कि मैं कहीं श्री राघवेन्द्र जू के कराम्बुजनाल से गिर पड़ूँ और वे व्याकुलता में मुझे कहीं छोड़ कर आगे बढ़ जायें और मैं वहीं पड़ी झीखती हुई :—

इतो भ्रष्टा ततो भ्रष्टा

का दृष्टांत बनूँ। अतः..........सुनते-सुनते श्री किशोरी जी अधीर हो गईं क्षोभ भी हो आया। मुद्रिका की बात बीच से काटकर श्रीजू कहने लगीं अरी जड़े! (धातु-स्वर्ण निमित होने से मुद्रिका के लिए "जड़े" सम्बोधन ठीक है) तेरी पहली बातें सुन सुनकर तो मुझे मधुर-मधुर रसास्वादन का आनन्दानुभव हो रहा था। परन्तु अब यह सुनकर दुःख हो रहा है कि अपने स्वार्थवश होकर ऐसे कुसमय में उन्हें छोड़कर तू चली आई! अरी हृदय-हीने! अन्तः शून्ये! (खोखली अंगुली में पहिनने वाले अवकाश युक्त होने से अन्तःशून्या कहा।)

आपत्ति काल परखिअहि चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी।

यह तो मैं जानती हूँ कि कभी भी धैर्य और धर्म मेरे प्रियतम से अलग होकर अपनी सत्ता ही स्थिर नहीं रख सकते, बड़े-बड़े मुनि लोग कहते हैं कि :—

(रामः) सत्ये धर्म इवापरः। धैर्येण हिमवानिव ॥
(वाल्मीकीय रा० १।११।१६।१७)

और मित्र सौमित्र-लक्ष्मण कुमार भी अपनी उस प्रतिज्ञा पर अटल हैं कि :—

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ।
क्षणार्द्धमपि जीवावो मत्स्योद्धृतमिवाम्भसा ॥

(बाल्मीकि रामायण अयो० ५३ । ३१)

प्रभु तुम बिनु सिय लखन मैं जियहुँ आध क्षण नाहिं ।
ज्यों 'कुमार' जलते कढ़त मीन तुरत मरि जाहिं ॥

परन्तु मैं अपनी क्या कहूं कदाचित् मेरी मृत्यु भी मृत्यु के मुख में चली गई हाय ! इस विपत्ति के समय धैर्य धर्म शार्ङ्गधनुष बाण, निषङ्ग, पीताम्बर, मृगचर्म और लक्ष्मण आदिक सब पुरुष वर्ग के लोग ही प्रियतम के आपत्ति कालिक साथी रह गये हैं :—

प्रभु संग आपति कालमें पुरुष लखन मृगचर्म ।
तूण वसन धीरज सहित रह्यो धनुषशर धर्म ॥

इस आपत्ति सवति के आते ही स्त्री शब्द से कही जाने वाली एक भी वस्तु उनके साथ नहीं रह गई । धीरे-धीरे सभी स्त्रियों ने सौतियाडाह बश उन्हें छोड़ दिया । जबकि आपत्ति बेला में :—

श्रीपुर में, बनमध्य मैं, तैं मगकरी अनीति ।

तब भला :—

 री मुंदरी ! अब तियन की को करिहैं परतीति ॥ (रामचन्द्रिका)

अर्थात् आपत्ति सवति का नाम सुनते ही राजश्री-राज सम्पत्ति ने तो अयोध्यापुर से निकल कर एक पग भी उनका साथ नहीं दिया, मैं और तूं ही उनके साथ-साथ बन तक आईं और दुर्दैववश मैं भी धोखा में उनसे अलग कर दी गई, परन्तु मैं तो परवश थी, किन्तु तूं तो स्वतन्त्रता से अधविचमार्ग में ही उन्हें छोड़कर चली आई है, तूने कितना भारी अन्याय किया है । अतः ऐसी

अनीति को देख सुनकर हम स्त्रियों की ऐसी स्वार्थ परता देख सुन जानकर और कौन ऐसा मूर्ख होगा जो स्त्रियों की प्रतीति करेगा। री पाषाण हृदये ! (मुद्रिका मणि जटित है, अतः उसे पाषाण हृदया कहना किसी प्रकार अनुचित नहीं हुआ) भला तूही तो बता…बात काटकर मुद्रिका कांपते स्वर में कहने लगी कि—देवि ! मेरी बात को पूर्ण रूप से सुने बिना ही मुझे एवं समस्त स्त्री समाज को आप दूषण देने लगीं है। आप यह कैसे कह सकती हैं कि सभी स्त्रियों ने उन्हें त्याग दिया है। यदि निगोड़ी पुंश्चली (जो ही राजा होता है उसी को राजश्री वरण करती है अतः पुंश्चली है) राजश्री श्रीअवधपुर में ही रह गई तो क्या आप मुखश्री ,ह्री, कीर्ति और प्रीति आदि ललनायें तो उनका पिण्ड कभी नहीं छोड़ सकतीं :—

अवध तजी श्री तुमहुँ मैं, जौ न रही प्रभु हाथ।
प्रीति, कीर्ति ह्री, मुखश्री; सन्दरि 'राघव' साथ॥

और आप शरीर से बिछुड़ गई हैं इसका उन्हें अकथनीय दारुण दुःख है, परन्तु आप उनकी मानस देवी हैं :—सशरीर उनके हृदय में निवास करतीं हैं, इसी कारण तो वे अब तक जीवित है। जिस दिन आप उनके हृदय से मुहूर्त-मात्र के लिये भी निकल जायेंगी उस दिन उसी क्षण उनका जीवन दुष्कर हो जायेगा। अध क्षणमात्र भी आपके बिना वे धराधाम पर रह नहीं सकते। अतः आपने भी उन्हें नहीं त्यागा है, और मैंने भी उन्हें नहीं त्यागा है।

आप एक आपत्ति सवति की बात करती हैं एक क्या यदि अनेकों सवति हो जायें तो भी सुवर्णा (सोने की बनी हुई (१)। सु=सुन्दर वर्ण वाली अर्थात् सर्वांग सुन्दरी पद्मिनी जाति वाली स्त्री। (२) सु=उत्तम कुल अर्थात् उत्तम स्वच्छ कुल में उत्पन्न हुई सुन्दरी। (३) सुवर्णा कभी स्वप्न में भी अपने पति-परमेश्वर से मन मोटा नहीं कर सकती है।

आपने मुझे जड़ कहा सो ठीक है। परन्तु क्या हम स्त्रियों को जड़वत् बनकर रहने की शिक्षा आपने अनेकों बार नहीं दिया है ? आपही ने तो बार-बार कहा है कि पत्नी सदैव पति की अनन्य भोग्या है। अतः स्त्रियों को चाहिए कि वे सर्वत्र सदैव चैतन्य (सावधान) होकर रहे, परन्तु पति के सामने जड़भूता बनकर रहना ही स्त्रियों का परम धर्म है। पति चाहे जैसे रक्खे पत्नी को पति के इशारे पर जड़ यत्रवत् नाचते रहना चाहिये, इसी में स्त्रियों का परम गौरव है।

आपने मुझे हृदय-हीना कहा, वह भी किसी तरह मिथ्या नहीं कहा जा सकता। परन्तु क्या आप यह कह सकती हैं कि जो स्त्री अपना हृदय अपने हृदयाधिपति प्रियतम को न देकर स्वयं अपने पास ही रक्खे रहती है क्या वह यथार्थ आनन्द का सीकर मात्र भी कभी स्वप्न में भी प्राप्त कर सकती है। हृदय को तो किसी के चरणों पर न्योछावर कर देने पर ही यथार्थ आनन्द रसामृत की अनुभूति होती है। अतः मैं अपना हृदय, अपना मन अपना कहलाने वाली सब कुछ अपने प्राण सर्वस्व जीवनधन प्रियतम श्रीराघवेन्द्र जू के चरणाम्बुजों पर न्योछावर करके अर्पण करके हृदयहीना बन गई तो क्या बुरा किया ? आपने भी तो अपना तन मन धन सर्वस्व अपने उन्हीं प्राण प्रियतम श्रीराघवेन्द्र के चरणों पर अर्पण करके अन्य स्त्रियों के लिये भी यही करने एवं कराने के लिये शिक्षा दी है। क्या आप भी मेरी तरह हृदयहीना अतएव अन्तःशून्या नहीं हैं ? क्या आपने अपना प्राण, अपना मन, अपना हृदय, अपना सर्वस्व प्राणधन प्रियतम श्रीराघवेन्द्र प्रभु के चरणों पर अर्पित नहीं कर दिया है। मुझे पूर्णरूपेण अवगत है कि आपका हृदय आपके पास नहीं हैं। यदि आपका हृदय आपके पास होता तो क्या अभी तक आप जीवित रहतीं ? नहीं कदापि नहीं। राम ! राम !! भला क्रूर राक्षसाधिपति लोकरावण रावण

और विकट रूपा, *एक नहीं दो नहीं पूरी सात सौ राक्षसियों द्वारा अहर्निशि सताई जाती रहने वाली कौन ऐसी सहृदया अबला होगी जो इतने दिनों तक जीवित रह सकती है, आप इसी कारण जीवित हैं कि आप भी मेरी हृदय हीना है। आज से ही नहीं अपितु आज से पचीसों वर्ष पूर्व से मिथिला नगरी में प्रियतम के प्रथम दर्शन के दिन से ही आपका हृदय प्रियतम के चरणों में क्रीड़ा कर रहा है।

आपने मुझे अन्तः शून्या कहा, तनक आपही तो बतलाइये कि मैं यदि कूड़ा करकट रूप समस्त वासनाओं को अपने अन्तःकरण से निकाल कर अन्तः शून्या न बन गई होती तो क्या।

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥

की उद्घोषणा करने वाले प्रियतम प्रभु कभी मुझे अपनाते। आपने ही कितनी बार कहा है कि सच्चा प्रेमी भक्त वही है जिसका अन्तःकरण वासनाओं से सर्वथा शून्य हो। भक्ति करने वाला जन अपने उपास्यदेव प्रेमास्पद से किसी वासना की पूर्ति करने की कामना करने वाला व्यक्ति भक्त या प्रेमी नहीं अपितु आदान करने वाला बनियां है :—

यस्त आशिस आशास्ते न सो भृत्यः स वै वणिक्॥

(भागवत ७।१०।४)

---

*एकाक्षीमेककर्णा च कर्णप्रावरणा तथा गोकर्णी हस्तिकर्णी लम्बकर्णीमकर्णिकाम्। हस्तिपाद्यश्वपाद्यौ च गोपदीं पाद चूलिकाम् एकाक्षीमेकपादीं च पृथु पादीमपादिकाम्॥

अतिमात्र शिरोग्रीवामतिमात्र कुचोदरीम् अतिमात्रास्थनेत्रां च दीर्घजिह्वामजिह्विकाम्॥

अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखींशूकरीमुखीम्॥

[बाल्मीकीय रामायण सुन्दर कांड सर्ग १७ श्लोक ५ से १७ तक द्रष्टव्य]

इसी तरह सच्ची पत्नी वही है जिसका अन्तःकरण वासनाओं से सर्वथा शून्य हो। जो स्त्री अपने प्रियतम से किसी भी वासना की पूर्ति चाहती है वह स्त्री सहधर्मिणी किंवा प्रियतमा कहलाने की अधिकारिणी नहीं, क्योंकि वह वासना (स्वार्थ) प्रिया होती है। इसलिये पत्नी नहीं अपितु पण्यस्त्री (बजारू बेश्या) वत् है।

आपने मुझे पाषाण हृदया कहकर संबोधित किया है। हे देवि! मेरी जबानबन्दी को आप बुरा न मानेंगी, मेरी यह धृष्ठता तो—

स्मारये त्वां न शिक्षये।

मात्र है। या यों मान लीजिये कि मैं तो आप का ही अनुकरण करती हूँ। हाँ, तो आपने मुझे पाषाणहृदया कहा सो ठीक ही है। परन्तु मैं आपसे ही जिज्ञासा करती हूँ, आप ही बतलाइये कि मेरी तरह अथवा आपकी ही तरह जिन साध्वी स्त्रियों ने अपना हृदय अपनें प्रियतम को दे दिया है, वे प्रियतम के वियोगकाल में अपने उस हृदय वाले रिक्त स्थान पर पाषाण न रख लिया करें, पाषाण हृदया न बन जाया करें तो क्या क्षणार्ध मात्र भी प्रियतम के वियोग को सहन करके जीवित रह सकती हैं? जो कोई अपने हृदय स्थान को पाषाणवत् कठोर बनाकर जगत के द्वन्द्वात्मक घनाघातों को घबराहट छोड़कर सहन नहीं करता वह जीव कभी रसघन प्रियतम को प्राप्त नहीं कर सकता। यदि मैं पाषाणहृदया न बनकर अनेकों बार प्रचण्डानल के तीव्रतमताप और घनों के घमासान घावों को सहन करने से घबरा गई होती तो भला सुवर्णा बनकर प्रियतम के कर-कमलों तक पहुँचती और आप युगल दिव्यदम्पति की सेवा का सौभाग्य कैसे प्राप्त करती? प्रियतम के कर में रहने से ही मैं—

दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी।<br>
मणि जटित रसीलीं माधुरी मूँदरी थी॥

(रहीम)

मेरे पाषाण हृदया होने का दूसरा कारण प्रधान रूप से यह है कि जब मैंने अपना हृदय प्रियतम के पूज्य पादपद्मों पर प्रीति पूर्वक समर्पित कर दिया तब हृदय के रहने वाले उस रिक्त स्थान अर्थात् हृदयाकाश में प्रिया-प्रियतम आप युगल सरकार को स्थापित करके बज्र (नीलम हीरा आदि) का कपाट लगा लिया कि यह युगल छवि कभी बाहर न जावे और न इस स्थान पर कोई दूसरा कभी प्रवेश कर सके ।

मेरे जड़ात्मिकत्व, हृदयहीनत्व, अन्तःशून्यत्व, और पाषाण–हृदयत्व के ही कारण प्रियतम प्राणधन श्रीचक्रवर्तीन्द्रकुमार कभी एक क्षण के लिये भी मुझको विलग नहीं करते, यहाँ तक की सोते, जागते, नहाते खाते, पीते, खेलते, बैठते, राजकाज करते, चलते, फिरते कभी भी मुझे अपने पास से अलग नहीं होने देते थे । मेरे लिये आपने जो जो कहा सो सब ठीक है, परन्तु आपने जो मुझे सवतियाडाह के कारण प्रियतम का साथ त्याग आना कहा, यही मेरे साथ अन्याय पूर्वक कहा गया है । क्योंकि मैं भाग कर नहीं आई हूँ अपितु प्राणधन श्रीराघवेन्द्रजू की भेजी हुई हूँ । आपतो जानती ही हैं किः—

"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा ।"

अतः स्वामी की आज्ञा से आपकी मङ्गलमयी गोद में आई हूँ । सुवर्णा होकर भला मैं अकेले कैसे आ सकती थी । *इसीलिये प्राणनाथ ने पुत्रवत् अपने परमप्रियदास के साथ मुझे यहाँ भेजा हैः—

बोलि लिये हनुमान करि सनमान जानि समाउ ।<br>
दई हौं संकेत, कहि कुशलात सियहिं सुनाउ ।।

( गो० श्रीतु० जी कृत श्रीरामगीतावली सुं० ५ )

यहाँ भेजने का कारण यह है कि प्रियतम प्रभु ने सोचा कि मेरे साथ तो भाई लक्ष्मणकुमार प्रारम्भ से हैं ही, इधर मित्रवर सुग्रीव की सहायता से

---

*सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य वरानने । प्रोषितं रामभद्रेण सुवर्णस्यांगुरीयकम् ।।
(महानटक ५ । ५६)

असंख्य बानर भालुओं का साथ भी मिल गया है। परन्तु मेरी प्राणप्रियतमा श्री जनक राजकिशोरी जू अकेली ही होंगी। अतः हे देवि ! आपके दुःख में सहयोग देने के लिये और एकान्त मिलने पर आपका मनोरंजन कराने के निमित्त मैं भेजी गई हूँ। अतएव आप निश्चय रखिये कि:—

मैं मग करी अनीति नहिं, करी धर्म शुचि सार।
तुव मन रंजन हित इतै, लायहु पवन "कुमार"॥

मैं अपनी सफाई दे चुकी, मेरी बातों पर आपको विश्वास आ गये हों तो प्रियतम प्रभु का सन्देश पवन कुमार से सुनिये।

(प्रेममयी मुद्रिका की यह जुबानबन्दी = उपर्युक्त सफाई एवं प्रेम व्याख्यान गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज़ विरचित श्रीरामगीतावली, श्रीराम-चन्द्रिका महानाटक एवं किशोर काव्य रामायण के श्रीजानकी मुद्रिका संबाद रूपी सूत्र के आधार पर लिखी गई हैं।) आज अनेक लोग तर्क करते हैं कि जब श्रीरामजी—

"तापस वेष विशेष उदासी।"

थे तो इस उदासीन स्थिति में श्रीरामजी के पास मुद्रिका कहाँ से आई जिसे भगवान् श्रीरामजी ने हनुमान्जी के द्वारा लंका भेजा था ? गंगा पार होने पर श्रीजानकीजी की मुद्रिका को श्रीरामजी का अपने पास रख लेना उदासी वेश के लिये संगत नहीं जान पड़ता, अपितु ढोंग भी होता तब वह मुद्रिका कहाँ से आई; कैसे और किसकी थी ?

---

## समाधान

श्रीगोस्वामीजी एवं अन्य अनेक प्रामाणिक श्रीरामचरित्र-वेत्ताओं ने लिखा है कि श्रीरामजी ने अपनी ही मुद्रिका श्रीहनूमानजी द्वारा लंका भेजी थी। कुछ प्रमाण देखिये:—

१—अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यंगुलीयकमुत्तमम्।
मन्नामक्षर संयुक्तां सीतायै दीयतां रहः॥
(अध्यात्मरामायण ४। ६। २८)

'एतत् मे अंगुलीयकम्।'

यहां स्पष्ट रूप से ऐसा श्रीरामजी ने श्रीहनुमान् जी से कहा। लंका में श्रीमारुति ने श्रीजानकी जी से बताया कि श्रीराम जी ने मुझसे कहा था कि—

२—अंगुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम्।
सीतायै दीयतां साधु मन्नामक्षरमुद्रिताम्॥
(अध्या० ५। ३४)

एतत् मे अंगुलीयकम्०।'

यहां भी उसी की पुनरावृत्ति की गई है कि यह श्रीरामजी का वाक्य कहा गया है।

३—अपश्यन्मुद्रिकां रम्यां रामनामांकितांशुभाम्।
तदातिचकिता सीता ज्ञात्वा तां राममुद्रिकाम्॥
आकुला हर्षशोकाभ्यां पृच्छति स्म पुनः पुनः।

(यह डेढ़ श्लोक वशिष्ठरामायण का बताया जाता है)

'ज्ञात्वा तां राममुद्रिकाम्।'

यहां भी स्पष्ट रूप से है कि उसे श्रीरामजी की मुद्रिका जानकर श्रीसीताजी

अत्यन्त चकित होकर बार-बार पूंछने लगीं। आनन्द रामायण में वर्णित है कि जब श्रीहनुमानजी सीताजी की खोज में जाने लगे तब—

४—ततौ रामः मुद्रिकां स्वां ददौ मारुति सत्करे ॥

(आन० रा० १ । ८ । ६)

'स्वां मुद्रिकां ददौ ।'

श्रीराम जी ने अपनी मुद्रिका दी। अशोक वाटिका में जब महारानी श्रीसीताजी को श्री हनुमान् जी ने मुद्रिका दी तो—

५—सा राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा तामब्रवीत् कपिम् ॥(आ०रा०१।६।११४)

'तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा० ।

यहाँ भी स्पष्ट है कि श्री सीताजी ने उस श्रीरामजी की मुद्रिका को देख कर उसे प्रणाम किया और बोली पुनः श्रीं हनुमान जीं के लंका लौटते समय—

६—तत्करे सीता ददौ तां श्रीराममुर्द्रिकाम्। (आ० रा० १ । ६ । २७६)

श्रीमद् बाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४४ श्लोक १२ में है कि

७—ददौ तस्यै ततः प्रीतः स्वनामांकोपशोभितम्।
अंगुलीयकमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥

इस पर टीका करते हुये भूषणकार श्रीगोबिन्दराज जी लिखते हैं कि ननु त्यक्त सकल साधनस्य वनबृत्या वर्तमानस्य कुतोऽगुलीयकमितिचेत् इदमेतत् कार्यार्थं रक्षितवान् अत एव स्वांगुलीकं उन्मुच्यनोक्तम्।

पुनः बालमीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड सर्ग ३६ श्लोक ४ में कहा है कि

८—ग्रहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम् ।

इसकी टीका करते हुए भूषणकार श्रीगोबिन्दराजजी लिखते हैं कि—

६—भर्तुः कर्रबिभूषणं····मौने कृते । रामोऽङ्गुलीयकं भूमौ च्यावतिस्म ।

पुनः नृसिंहपुराणे ५१ । ३४

तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वारामांगुलीयकम् ॥

भट्टि काव्य में लिखा है, कि श्रीजानकी जी को मुद्रिका देते हुये श्रीहनुमान्जी ने कहा कि आपको अत्यन्त स्मरण करते हुए श्रीरामजी ने यह मुद्रिका अभिज्ञान रूपसे आपको देने के लिए आदरपूर्वक मुझे दी है ।

१०–अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकम् ।
भवत्याः स्मरताऽत्यर्थमर्पितः सादरं मम ॥

(भट्टि काव्य ८।११८)

हनुमन्नाटक में बर्णित है कि श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमानजी से पूँछा कि—

११–किमिदं हस्तेऽस्ति ? तन्मुद्रिका दत्ता तेन तवैव तां निजकरात्

(हनु० ना० ६।१४)

यह तुम्हारे हाथ में क्या है । श्रीहनुमान्जी ने कहा कि श्रीरामजी की मुद्रिका है । उन्होंने आपके लिये अपने हाथ से दिया है ।

१२–सौख्यावहस्य पवनात्मजनीयमानरामांगुलीयकविलोकनवासरस्य ।
सत्यंकलां शततमीं भुविनैव भेजे पाणिग्रहोत्सवदिनं जनकात्मजायाः ॥

(चम्पूरामायणं सुन्दरं कांडं श्लो० ३०) यहां भी "रामांगुलीयक" है ।

१३-या शैशवावधि···  (प्र० रा० ना० ६।३७)

अर्थ एवं अनुवाद सहित यह पूरा श्लोक इस लेख के आरम्भ में दिया जा चुका है । हिन्दी के रीतिकालीन व्रजभाषा के कवियों में आचार्य श्रीकेशवदासजी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ राम चन्द्रिका में लिखा है किः—

१४–आंसुबरषि हियरे हरषि सीता सुखद सुहाइ।
निरखिनिरखि पियमुद्रिकहिं बरनति हैं बहुभाइ।।

१५–सुखदा सिखदा अर्थदा जसदा रस दातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका किधौं परमगुरु नारि।।

यहां साफ-साफ शब्दों में 'पियमुद्रिकहिं' और 'रामचन्द्र की मुद्रिका' कहा है। वहीं रामचन्द्रिका ही में और भी लिखा है कि :—

१६–श्री पुरमें बन मध्य मैं तैं मग करी अनीति।
री मुन्दरी अब तियन की को करिहै परतीति।।

१७–तुम पूँछति कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम।।

श्रीरामजी ने जब श्रीहनुमानजी से कहा कि:—

बहु प्रकार सीतहिं समुझायहु। कहिबलविरह बेगि तुम आयहु।।

तो विरह किस तरह कहना तो गोस्वामी जी से चार पांच सौ वर्ष पूर्व श्री वासुदेव कवि ने यही रामकथाचंपू में कहा है जो संवाद भाग में पीछे उद्धृत है। इसका संकेत श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी ने बरवै रामायण में लिखा है कि श्रीहनुमान् श्री रामजी से कहा कि:

१८–है कपि जीवन की अब आश न कोइ।
कनगुरिआकै मुंदरी करकै कंगन होइ।।

इसी पद्य का अनुवाद आचार्य केशव ने रामचन्द्रिका में–तुम पूँछति कहि मुद्रिके०। दोहे में किया है। प्रेस के प्रेतों ने इस बरवै पद्य के ऊपर का 'रामवाक्य' पद उड़ा दिया। केशव के काल (गोस्वामी जी के समय) में वह शब्द था तभी तो केशव ने अनुवाद किया कि:—

कंकन की पदवी दई, तुम विनु या कहँ राम।

श्री रसिकविहारी जी (महांत श्रीजानकीप्रसाद जी) अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रामरसायन के सर्ग ८ दोहा २१६ में लिखते हैं किः—

१९–लई सिया आतुर हुलसि पियमुँदरी पहिचानि ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी से बहुत पूर्व बंगला के सुप्रसिद्ध महाकवि पं० श्रीकृत्तवासजी ने कृतवासी रामायण के सुन्दर काण्ड सर्ग ६ में लिखा है कि श्रीसीताजी के सन्देह उठाने पर श्रीहनुमानजी ने जी कहा किः—

२०–आमार बचने यदि ना हयप्रत्यय।
रामेर अंगुरी देख हइबे निश्चय ॥५२॥
अँगुरी देखाय तारे पवन नन्दन।
अनिमेषे जानकी करेन निरीक्षण ॥५३॥
रामेर अंगुरी देखि हइल विश्वास।
हस्तपाति लइलेन जानकी उल्लास ॥५४॥
रामेर अँगुरी देखि सीता देबी कांदे।
बूके बुलाइया सीता शिरेकरि बन्दे ॥५५॥

श्रीरघुनाथदासजीरामस्नेही अपने परमप्रसिद्धग्रंथ विश्राम-सागर के रामायणखण्ड सुन्दरकांड में लिखते हैं किः—

२१–लखि मुँदरी रघुपति कर केरी। बोली बचन तासु तन हेरी ॥

सत्रहवीं शताब्दी में खड़ी बोली के सुप्रख्यातकवि 'शीतल' ने भी लिखा है कि–

२२–देखि देखि दुष्टता दबंगदशकंधर की,
पीसि पीसि रदन कपीश हियहारदी।
कौतुकन कठिन कुत्रास निशाचारिन की,
करुणा कुजा की कीश हृदय विदारदी।

बैठ वीर दुवकि दुबीच नीच पल्लव की,
बारिबूँद बिलखि बिलोचन ते ढारदी ॥
बिरह तपीतल को 'शीतल' करन हेत ।
राघव की मुद्रिका महीतल पै डार दी ॥

श्रीभगवन्त सिंहजी कृत नखशिख में श्रीजानकी जी को मुद्रिका से पूँछना वर्णन है कि:—

२३-प्रीतिमप्रियारीप्राण हीतमदियारी ज्योति-
जागति तिहारी दीप दीपन में सुन्दरी ।
धार्‌यो है सु बालपन ही ते तोंहि रामचन्द्र,
बिछुरी सो हेतु कौन कीन्हें मन तुन्दरी ॥
बाउरी न होसि तैं सुनाउरी कुशलनाथ,
छाउरी प्रमोद, काटु शोक फांस फुन्दरी ।
जाऊँ बलि बेगि सो बताउ मोंहि भाग्यवन्ति,
आई यहि ठाम क्यों तु नाथ हाथ मुँदरी ॥

ये थोड़े से प्रमाण श्रीगोस्वामी के अतिरिक्त अन्य प्राचीन अर्वाचीन श्रीरामचरितवेत्ताओं के हुये, अब देखना चाहिये कि श्रीगोस्वामीजी का अपना मन्तव्य क्या है ? वे स्वयं अपनी कौन सी धारणा प्रगट करते हैं कि सहिदानी में भेजी गई मुद्रिका किस की थी, श्रीरामचन्द्रजी की अथवा श्रीसीताजी की ? श्रीजानकी की मुद्रिका का वर्णन मानसमें केवल एकबार आया है। उसे वहाँ पर:—

मणिमुँदरी मन मुदित उतारी ।

केवल मणिजटित प्रकाशमानमात्र कहा गया है चित्तहारिका नहीं । परन्तु:—

२४-पीत जनेउ महाछवि देई । कर मुद्रिका चोर चित लेई ।

यहां श्रीरामजी की मुद्रिका के लिये 'चोरिचित लेई' विशेषण लक्ष्य है और:—

तब देखी मुद्रिका मनोहर।

लंका में मुद्रिका के लिये 'मनोहर' विशेषण लगा है। 'मनोहर तथा चोरिचित लेई।' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। पुनः श्रीरामाज्ञा में श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं कि—

२५-पाइ नाथकर मुद्रिका सियहिय हर्ष विषाद।
प्राणनाथ प्रिय सेवकहिं दीन्ह सुआशिरबाद ।।

यहाँ 'नाथ कर मुद्रिका' कहा है अपनी मुद्रिका नहीं कहा। और गीतावली सुन्दरकांड में वर्णन है कि श्रीजानकी जी को मुद्रिका मिली तब:—

२६-हृदय हर्ष विशाद अति पतिमुद्रिका पहिचानि।

यहाँ भी 'पतिमुद्रिका' शब्द है निज मुद्रिका नहीं। अनेकों प्रमाण हैं कि जो मुद्रिका श्रीहनुमानजी लंका ले गये थे वह श्रीराम जी की अपनी मुद्रिका थी। ऊपर दो दर्जन प्रमाण अनेक सद्ग्रन्थों एवं गोस्वामीजी की साक्षी के उद्धृत किये गये हैं।

उपर्युक्त अनेक श्रीरामचरितमानस मर्मज्ञों एवं श्रीगोस्वामी जी की भी अवहेलना करके कुछ पंडित मन्य लोग मानसकी कथाओं में क्यों कहते हैं कि 'जो मुद्रिका श्रीहनुमान्‌जी लंका ले गये थे वह श्रीजानकीजी की मुद्रिका थी इसका कारण वे अनर्थक प्रलाप करने वाले ही बता सकेंगे। कुछ लोग वन-यात्रा प्रकरण में गंगा पार होने के समय जब—

केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच यहि नहिं कुछ दीन्हा ।।
पिय हियकी सिय जाननिहारी। मणि मुँदरि मनमुदित उतारी ।।
कहेउ कृपालु लेहु उतराई

इन पंक्तियों के आधार पर यह कहते हैं कि जब केवट ने नहीं लिया तो श्रीरामजी ने उसे सीताजी को वापस न देकर स्वयं पहिन लिया और वही हनुमान्‌जी के हाथ भेजा था। परन्तु यह बात किसी तरह प्रमाणित नहीं की जा सकती। क्योंकि यदि श्रीराम जी ने अपने हाथ में लेकर केवट के देने की बात कही हो तो आगे के दोहे में पुनः मुद्रिका का श्रीसीताजी के हाथ में पहुँच जाना सिद्ध होता है। इस तरह कि—

"बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कछु केवट लेइ।"

अर्थात् मुद्रिका हाथ में लेकर श्रीरामजी ने बहुत आग्रह किया, केवट के न लेने पर श्रीलक्ष्मणजी अपने हाथ में लेकर बहुत आग्रह किया, फिर भी उसके न लेने पर श्रीसीताजी ने मुद्रिका को अपने हाथ में लेकर बहुत आग्रह किया, परन्तु तब भी केवट के न लेने पर श्री जानकीजी ने पुनः अपने हाथ में पहिन लिया। अतः श्रीसीताजी की मुद्रिका श्रीसीताजी के हाथ में ही रह गई। श्रीरामजी ने अपनी ही मुद्रिका किष्किन्धा से भेजी थी। अब तापस वेष विशेष उदासी।" पर शंका की जाती है कि विशेष उदासी होकर श्रीरामजी मुद्रिका क्यों ले गये परन्तु यह शंका तो यदि गंगा पार श्रीजानकी जी की मुद्रिका पहिन ली तब भी ऐसी ही बनी रहती बल्कि और भी उग्र रूप में शंका हो जाती, तब तो उदासी बनकर अयोध्या से बन के लिये जाना एक दम्भ हो जाता।

अस्तु—

जैसे मुद्रिका के लिये शंका उठाई जाती है वैसे ही धनुष, बाण, तरकस, तलवार, आदि शस्त्रास्त्र और स्त्री सीताजी भाई लक्ष्मणजी आदि परिवार के लिये भी शंका उठ सकती है। क्योंकि शस्त्रास्त्र एवं पत्नी भाई आदि परिवार भी तो विशेष उदासी के अंग नहीं हैं। परन्तु श्रीरामजी सब ले गये थे। इसके कई कारण हो सकते हैं—

(क) श्रीरामजी को बन लीला में जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता थी उस वस्तु को अपने साथ ले गये थे क्योंकि—

'सदा स्वतंत्र राम भगवाना ।'

'परम स्वतंत्र न सिर पर कोई' । भावै मनहिं करहु तुम सोई ।।

पत्नी, भाई, शास्त्रास्त्र की तरह मुद्रिका भी बनलीला के आवश्यक उपकरणों में थी । इसी से मुद्रिका साथ ले गये थे । भूषणकार पं० गोबिन्दराज जी ने तो यही समाधान ही किया है कि—

'इदमेतत्कार्यार्थैरक्षितवान् ।'

(ख) यहाँ विशेष उदासी से ग्राम संसर्ग साहित्य का ही ग्रहण है जैसा कि जगह-जगह प्रसंग आने पर श्री रामजी ने स्वयं ही स्पष्ट किया है, यथा—

१—वर्ष चारि दश बास बन मुनि ब्रत वेष आहार ।
ग्राम बास नहिं उचित सुनि गुहहिं भयउ दुखभार ।।

२-कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा । पुर न जाऊँ दश चारि वरीशा ।।

३—पिता बचन मैं नगर न जाऊँ ।।

विशेष उदासी का तात्पर्य, नगर, गाँव, पुर आदि में न जाकर चौदह वर्ष तक बन में ही रहता है—

पिता बचन तजि राज उदासी । दण्डक बन विचरत अविनासी ।।

(ग) किसी-किसी स्थल पर बताया गया है कि सपत्नीक या ससैन्य यात्रा में राजा या राजपुत्र को नदी में नंगे पांव से चल कर पार नहीं करना चाहिये, चाहे नदी में थोड़ा ही जल क्यों न हो, इसी से दशरथजी के जनकपुर जाते समय जनकजी ने छोटी बड़ी सभी नदियों में पुल बनवा दिया था ।

आवत जानि भानु कुल केतू । सरितन जनक बँधायेउ सेतू ।।

और इसीसे शृंगवेरपुर में निषाद गुह ने भी कहा था कि—

'कटिलौं जल थाह दिखाइहौं जू । (कवितावली)

तो भगवान् श्रीरामजी ने सपत्नीक होने के कारण ही कटि पर्यन्त मात्र जल में प्रवेश कर पार जाना स्वीकार नहीं किया था । इसी तरह राजा या राजपुत्र को पत्नी के साथ रहते हुये कर्मकाँड के समय हाथ में स्वर्ण निर्मित मुद्रिका धारण करना आवश्यक है । कोई भी कर्मकलाप किसी को भी रिक्त हस्त नही करना चाहिये ।

यज्ञे, होमे, जपे, दाने, स्वाध्याये, पितृतर्पणे ।
अशून्यं तु करं कुर्य्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः ॥
(आन्हिक सूत्रावल्य मुद्धृतः मार्कण्डेयः)

श्रीरामजी सदैव के लिये तो सन्यासी हुये ही नहीं थे जो सर्वथा अपरिग्रही बनते, केवल चौदह वर्षों के लिये बनमें जाना पड़ा था, सपत्नीक रहे, नित्य नैमित्तिक कर्म तो करना ही था । बिहितकर्मों को त्यागकर शास्त्रीय मर्यादा को दूषित नहीं करना चाहते थे । साथ में श्रीसीताजी न होतीं तब तो कुश से भी काम चल जाता जैसा कि श्री सीता हरण के बाद प्रतिनिधि सीता से कर्मकाण्ड का सम्पादन होता रहा । राज परिवार के अतिरिक्त अन्य लोग भी कर्मकाण्ड में स्वर्णमुद्रिका धारण कर सकते हैं परन्तु जब समय पर दर्भ कुश की मुद्रिका न मिले तब—

यथा आह्निकसूत्रावल्या मुद्धृत कातीय सूत्रभाष्ये-
दर्भाभावे स्वर्णरौप्य ताम्रैः कार्या क्रिया सदा ॥

किन्तु राज परिवार के लिये नियम है कि—

स्वर्णाभावे रौप्यताम्रदर्भाद्याः नृपतेः क्रिया ।

इसीलिए जब तक श्रीसीताजी साथ में रहेंगी तब तक स्वर्ण मुद्रिका पहिनने के लिये श्रीराम जी वाध्य हैं । यही कारण साथ में मुद्रिका ले जाने का है । कर्मकाण्ड की परमोपयोगी वस्तु होने के कारण ही मुद्रिका की गणना शृङ्गार के भूषणों में नहीं की जाती । इसी कारण बन जाते समय—

पितु आयसु भूषण बसन तात तजे रघुवीर।

अन्य भूषणों को त्यागते समय श्रीरघुबीर ने मुद्रिका का त्याग नहीं किया था। इसीसे स्वयं कौशल्या जी ने रामजी को मुद्रिका पहने हुये बन जाने को कहा था—

इयं विमुंच मांबत्स राम रत्नांगुलीयकम् (प्रस०रा०ना० ×।११)

(घ) धनुषबाण तरकस और मुद्रिका दशरथजी के अयोध्या राज्य की वस्तु भूषण नहीं थी, इन्हें तो श्रीरामजी अपने साथ त्रिपाद् विभूति से लाये थे। प्रगट होते समय साथ में लिये थे, देखिये जन्म छन्द—

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
निज आयुध भुज धारी···। भूषन वन माला।

मुद्रिका त्रिपाद् विभूति की ही वस्तु होने के कारण बोलती थी।

———

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
16081
अयोध्या
श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

# लेखक की प्रकाशित रचनायें

| | | |
|---|---|---|
| १—श्री राममंत्रार्थं (सार्थं राम तारक प्रयोग विधि) | अप्राप्य |
| २—मानस पारायण पूजन पद्धति | ,, |
| ३—मानस सिद्धान्त | ,, |
| ४—धर्मरथ | ,, |
| ५—वेदों में राम कथा | ,, |
| ६—दो विभूतियाँ | ,, |
| ७—मंगल पचीसी | ५० पैसा |
| ८—सम्वाद बतीसी | ५० पैसा |
| ९—सखी गीता | ५० पैसा |
| १०—श्री जानकी चरण चामर की सरलाटीका | अप्राप्य |
| ११—श्री जानकी चरण चामर का पद्मानुवाद | ,, |
| १२—श्री सीता गुणगान | २ रुपया |
| १३—प्रेममयी मुद्रिका | ४ रुपया |
| १४—श्री राम स्वभाव | ५० पैसा |
| १५—मान सशंका समाधान रत्नावली प्रथम खंड | ४ रुपया |
| १६—मान सशंका समाधान रत्नावली द्वितीय खंड | ४ रुपया |
| १७—तुलसीकृति का पाठ कैसा हो | ५० पैसा |
| १८—भागवत में श्री राम परत्व | ३ रुपया |
| १९—मानस में नारीदीक्षा और नारी निन्दा | ७५ पैसा |
| २०—मानस में दो दान | ७५ पैसा |
| २१—राम चरित के तीन क्षेपक | २ रुपया |
| २२—मानस चतुश्शती कुसुमांजलि | २५ पैसा |
| २३—जननी शतक | १ रुपया |
| २४—श्री रामरण क्रीड़ा | २ रुपया |
| २५—जय जटायु | ३ रुपया |

मुद्रक—श्रीमती सुशीला देवी सक्सेना, एम० ए०, माधो प्रिंटिंग वर्क्स,
२४२, पुराना बैरहना, इलाहाबाद